सरसों

वर्गीय फसलों में समेकित नाशीजीव प्रबन्धन

महेन्द्र सिंह यादव, डी.के. यादव*, एस.के. सिंह,
नसीम अहमद एवं नीलम मेहता
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली
*सहायक महानिदेशक (बीज), भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

सरसों वर्गीय फसलें हमारे देश की तिलहन अर्थव्यवस्था में मुख्य भूमिका निभाती है। इन फसलों की बढोतरी का सीधा असर दुर्लभ विदेशी मुद्रा की बचत में होता है। सरसों वर्ग की फसलों में राया या राई, पीली व भूरी सरसों, तोरिया, गोभी सरसों, अफरीकन सरसों व तारामीरा है। इन फसलों के कुल क्षेत्रफल में हमारा देश विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है, लेकिन प्रति हैक्टेयर उत्पादकता में काफी पीछे है। भारतवर्ष संसार की कुल पैदावार का 10.9–14.1 प्रतिशत फसल उत्पादन करता है जो एक अहम बात है। इन फसलों की खेती लगभग 7 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में की जाती है जिससे लगभग उत्पादन 7.98 मिलियन टन होता है। सरसों वर्गीय तेलों को खाने एवं खाना बनाने के लिए बहुत बढ़िया समझा जाता है। इनमें पुफा सफा अनुपात काफी अच्छा है। इन फसलों की खेती राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश व गुजरात में होती है। सरसों की खेती अधिकतर वर्षा संचित नमी अथवा सीमित सिंचाई सुविधा वाले क्षेत्रों मे की जाती है। इन फसलों की उपज को बढ़ाने तथा उसको टिकाऊ बनाये रखने में एक प्रमुख समस्या नाशीजीवों (कीटों और रोगों) का प्रकोप है जो कुछ हद तक इन फसलों के अस्थिर उत्पादन के लिए उत्तरदायी है। प्रतिकूल मौसम और रोगों के प्रकोप के कारण वर्ष 1997– 98 में सरसों वर्गीय फसलों का उत्पादन पिछले साल 7.0 मिलियन टन से घटकर 4.9 मिलियन टन रह गया था। इस लेख के माध्यम से सरसों वर्गीय फसलों के प्रमुख नाशीजीवों की पहचान एवं समेकित नाशीजीव प्रबन्धन के उपाय प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

मुख्य कीट

पेन्टेड बग (दगाली बग)

प्रौढ़ बग चपटी होती है। इसका रंग चमकीला काला तथा शरीर में नारंगी या भूरे रंग के धब्बे होते हैं। यह कीड़ा फसल को दो बार हानि पहुंचाता है – प्रारम्भिक अवस्था में अक्टूबर–नवम्बर में तथा फसल पकने की अवस्था में मार्च – अप्रैल। इस कीट के शिशु एवम प्रौढ़ दोनों ही पत्तियों, फूलों, तनों तथा फलियों का रस चूसते है। अधिक प्रकोप होने पर पौधों की बढ़वार रूक जाती है। अधिक आक्रमण से पौधे मर भी जाते हैं। फसल पकने के समय भी कीड़े के प्रौढ़ व शिशु फलियों से रस चूसकर दानों में तेल की मात्रा को कम कर देते हैं जिससे दानों के वजन में भी कमी आ जाती है।

चेपा/माहू/अल कीट

ये कीट आकार में छोटे मुलायम, सफेद – हरे रंग के होते हैं। शरीर के पिछले सिरे में दो नलिकाएं होती हैं। इनके मुखांग रस चूसने वाले होते हैं। इसके झुण्ड पत्तियों, फूलों, डंठलों व फलियों आदि पर चिपके

रहते हैं एवम रस चूसकर पौधों को कमजोर बना देते हैं। इसका प्रकोप दिसम्बर माह के अन्तिम सप्ताह में शुरू होता है जब फसल पर फूल बनने शुरू होते हैं व मार्च तक बना रहता है। प्रौढ़ व शिशु पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं। यह कीट इस फसल का प्रमुख हानिकारक कीट है। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ दोनों ही पौधे की पत्तियों, तनों, पुष्पक्रम एवं फलियों से समूह में रहकर रस चूसते हैं। इसके कारण पौधे पीले बदरंग और कमजोर हो जाते हैं तथा फलियों की संख्या कम तथा दाने कम एवं छोटे रह जाते हैं। ये कीट मधु जैसा पदार्थ भी स्रावित करते हैं जिससे बाद में काला फफूंद लग जाता है। इसके कारण पौधों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया प्रभावित होती है। बादलों वाला मौसम एवम कम तापमान इस कीट के प्रसार के लिए बहुत उपयुक्त होता है। यह कीट सरसों की फसल को 25 से 40 प्रतिशत तक नुकसान पहुंचाता है।

आर्थिक क्षति स्तरः – जब एक पौधे पर माहू की संख्या 25 तक पहुंच जाए तथा 30 प्रतिशत पौधों पर इसका संक्रमण हो जाए।

मुख्य रोग

पौद आर्द्र गलन (डैंपिंग ऑफ)

यह रोग कई कवकों जैसे, *राइजोक्टोनिया, फाइटोफ्थोरा, फ्यूजेरियम, पिथियम, स्क्लेरोशियम* आदि की जातियों से जनित है। इस रोग की दो अवस्थाएं होती हैं (अ) बीज के उगने से पहले की अवस्था (ब) बीज के उगने के बाद की अवस्था। बीज के उगने से पहले की अवस्था में बीज का भ्रूण भूमि के बाहर अंकुरित होने से पहले ही रोगग्रस्त होकर मर जाता है। मूलांकुर एवं प्रांकुर बीज से बाहर निकल आते हैं। फिर भी, वे सड़ जाते हैं। बीज के उगने के बाद की आर्द्र गलन अवस्था छोटे पौधों में पाई जाती है। संक्रमण, पौद में भूमि के अंदर वाले भाग में तथा भूमि की सतह पर होता है। संक्रमित भाग मुलायम तथा जलसिक्त हो जाता है। जैसे–जैसे रोग बढ़ता है, संक्रमित स्थान पर तना सिकुड़ जाता है तथा पौद गिर जाती है साधारणतया पौद के संक्रमित होने से पहले पत्तियों एवं बीजपत्र पर म्लानी के लक्षण स्पष्ट होते हैं। कवक मृदा में या पादप अवशेषों पर पोषण करके काफी समय तक जीवित रहता है। परंतु मृदा पर गिरे स्क्लेरोशियम एवं पादप अवशेषों पर पोषित कवकजाल प्राथमिक निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं। संवर्धन वातावरण में राइजोक्टोनिया के लिए अनुकूलतम तापमान 25–30 से. ग्रे. न्यून्तम 8 से. ग्रे. और अधिकतम 31–35 से. ग्रे. होता है। पौद संक्रमण 18 से. ग्रे. तापमान पर अच्छा होता है। तथापि इसकी संक्रामकता नम मृदा में अधिक होती है। मृदा में नमी होने के साथ–साथ उच्च तापमान का होना रोग की संक्रामकता को बढ़ाने में काफी मदद करता है।

काले धब्बों का रोग (आल्टरनेरिया ब्लाईट) आल्टरनेरिया अंगमारी

यह रोग *आल्टरनेरिया ब्रैसिकी* कवक द्वारा होता है। इस रोग के प्रकोप से पीली सरसों की पैदावार में 35–45 प्रतिशत, तोरिया में 25–45 प्रतिशत तथा राया में 17–18 प्रतिशत तक की कमी आती है। इस रोग से बीज की गुणवत्ता जैसे रंग, आकार तेल की मात्रा एवं अंकुरण क्षमता प्रभावित होती है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पौधों की निचली पत्तियों की उपरी सतह पर बुआई के लगभग 60–70 दिन के बाद गोलाकार हल्के भूरे धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। बाद में ये धब्बे हल्के काले रंग के बड़े आकार के हो जाते हैं तथा इन धब्बों में गोल छल्ले से साफ नजर आते हैं। कई धब्बों के आपस में मिल जाने से पूरी पत्ती झुलस जाती है। जैसे–जैसे रोग उपर बढ़ता है निचली पत्तियां झुलस कर गिर जाती हैं। पत्तियों पर धब्बे अनुकूल वातावरण में तेजी से बढ़ते हैं जिससे पत्तियाँ असमय नष्ट हो जाती हैं और पैदावार में हानि पहुंचती है। बाद में काले धब्बे तनों व फलियों पर भी बन जाते हैं। जिससे दाने छोटे, बडे हो जाते हैं

व दानों का रंग बदल जाता है। रोग का प्रकोप अधिक होने पर फलियाँ फट जाती हैं व दानें झड़ जाते हैं। फलियों में दाने सिकुड़ जाते हैं जिससे किसानों को अपने उत्पादन का सही मूल्य नहीं मिल पाता है। इस रोग का कवक रोगी पौधों के अवशेषों पर मिट्टी में जीवित रहता है अथवा दूसरे पौधों को संक्रमित कर उस पर अपना जीवन चक्र पूरा करता है। इस रोग के विकास में 20–25 सें. ग्रे. तापमान तथा वातावरण में 80 प्रतिशत से अधिक आपेक्षित आर्द्रता सहायक होती है। गीला व गर्म मौसम या अदल–बदल के वर्षा व धूप तथा तेज हवाएँ इस रोग को बढ़ाती हैं।

सफेद रतुआ/श्वेत किट्ट (व्हाइट रस्ट)

यह रोग *एल्ब्यूगो केन्डिडा* कवक द्वारा जनित होता है जो एक अविकल्पी परजीवी है। परीक्षणों से पाया गया है जिस पौधे में यह रोग तना एवं पुष्पक्रमों में दिखाई पड़ता है उसमें 60–70 प्रतिशत तक पैदावार में कमी आती है। इस रोग में सर्वप्रथम पत्तियों की निचली सतह पर सफेद अथवा बादामी रंग के दाने जैसे धब्बे बनते हैं। पत्तियों की उपरी सतह पीली या गुलाबी रंग की हो जाती है। ये छोटे–छोटे सफेद धब्बे एक दूसरे से मिलकर बड़ा रूप धारण कर लेते हैं। इसमें से सफेद कण बाहर निकलने लगते हैं व रोग को फैलाते हैं। रोग की गंभीर अवस्था में पत्तियाँ सूखकर गिर जाती हैं जिससे पौधे कमजोर रह जाते है। यह रोग पुष्पक्रम को भी प्रभावित करता है जिससे पुष्पक्रम फूलकर विकृत आकार के हो जाते है। इस अवस्था को स्टैगहैड कहते हैं। विकृत पुष्पक्रमों पर फलियाँ नहीं बनती हैं, यदि बनती हैं तो दाने नहीं पड़ते। इस रोग का कवक मिट्टी में रोगी पौधों के अवशेषों पर जीवित रहता है अथवा बीज के साथ रहता है जो दूसरे वर्ष बोई जाने वाली सरसों वर्गीय फसलों को संक्रमित करता है। यह रोग दिसम्बर–जनवरी में जब तापमान 5–12 सें. ग्रे. आपेक्षित आर्द्रता 80–90 प्रतिशत तथा हवा के साथ वर्षा होती है तो तीव्र गति से फैलता है। पछेती फसल पर इस रोग का प्रकोप ज्यादा होता है।

मृदुरोमिल आसिता (डाउनी मिल्डयू)

यह रोग *हायलोपेरोनोस्पोरा पैरासिटिका* कवक द्वारा जनित है। इस रोग के लक्षण पौधों के सभी भागों पर देखे जा सकते हैं। बीज पत्र की अवस्था में रोग का प्रकोप होने से पौधे प्रारंभिक अवस्था में ही सूख जाते हैं जिससे पौधों की संख्या में कमी आ जाती है। बुवाई के कुछ दिन बाद बीज तथा उपर की कुछ पत्तियों पर हल्के रंग के छोटे–छोटे कोणीय धब्बे दिखाई पड़ते हैं। फिर धब्बों के ठीक नीचे पत्तियों की निचली सतह पर रूई जैसी कवक की वृद्धि दिखाई पड़ती है। रोग की उग्र अवस्था में ग्रसित पत्तियाँ सूखकर मुड़ जाती हैं तथा गिर जाती हैं। इस रोग का प्रकोप पुष्पक्रमों पर भी होता है। यह कवक, रोगग्रस्त पौधों के अवशेशों के साथ मृदा में रहता हैं। पौधों के अवशेशों के विघटित हो जाने पर कवक मिट्टी में मौजूद रहते हैं एवं दूसरे मौसम में परपोषी के बोने के बाद प्राथमिक निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं। एक बार संक्रमण हो जाने पर क्षतस्थल पर बने कोनिडियम द्वितीय निवेश द्रव्य का कार्य करते हैं। संक्रमण के लिए 10–20 सें. ग्रे. तापमान एवं 90 प्रतिशत से अधिक नमी उपयुक्त होती है। कोनिडियम का अंकुरण इसी अनुकूल वातावरण में अधिक होता है।

स्क्लेरोटीनिया तना गलन (स्क्लेरोटीनिया स्टैम रॉट)

यह रोग *स्क्लेरोटीनिया स्क्लेरोशियोरम* कवक से होता है। इस रोग का प्रकोप अब राजस्थान, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के उत्तरी पश्चिमी भागों में बहुतायत में हो रहा है। यह मृदा व बीज जनित रोग है। लगातार एक ही खेत

में सरसों वर्गीय फसल बोने से रोग की उग्रता और बढ़ जाती है। इस रोग का प्रकोप फूल आने की अवस्था में अधिक होता है। जब मौसम ठंडा व नम होता है तो इस रोग की उग्रता बढ़ती है। इस रोग में पत्तों व तनों पर लंबे चिपचिपे सफेद धब्बे दिखाई पड़ते हैं जो बाद में रूई जैसे सफेद कवकजाल की वृद्धि से ढक जाते हैं। जब रोग की शुरूवात पत्ती से होती है, तब पत्ती मुरझा कर नीचे की ओर लटक जाती है। जब तने के चारों तरफ इन धब्बों का घेरा बन जाता है तो पौधे मुरझा कर सूख जाते हैं। धब्बा जब छोटा होता है तो पौधा सूखता नहीं अपितु औसत से छोटा रह जाता है और समय से पहले पक जाता है। ऐसे पौधों को आसानी से खेत में पहचाना जा सकता है। इस रोग से सूखे पौधों के तनों में काले रंग वाले पिंड बन जाते हैं।

प्रारंभिक संक्रमण एस्कोस्पोर (जो कि मृदा की सतह पर ऐपोथीसियम से निकलते हैं) द्वारा होता है। स्कलेरोशियम कवक की प्रसुप्त संरचना है। कवक मिट्टी में काले रंग के स्कलेरोशिया के रूप में मौजूद रहता है।

चूर्णिल आसिता (पाउडरी मिल्डयू)

यह रोग *इरिसिफी क्रुसीफेरेरम* नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है। प्रायः फरवरी – मार्च में जब वातावरण का तापक्रम बढ़ जाता है तब इसका प्रकोप होता है। प्रारम्भ में यह रोग पौधों के तनों, पत्तियों एवं फलियों पर श्वेत, गोल आटे जैसे चूर्णित धब्बों के रूप में दिखाई पड़ता है। तापमान की वृद्धि के साथ–साथ ये धब्बे आकार में बड़े हो जाते हैं और समस्त पौधे को ढक लेते हैं जैसे उपर सफेद दानेदार चाक का चूरा छिड़का दिया गया हो। संक्रमित पौधा कमजोर हो जाता है व फलियाँ कम लगती हैं। रोगग्रस्त फलियाँ आकार में छोटी या खाली रह जाती हैं और उनमें सिकुड़े हुए कुछ ही बीज के दाने बनते हैं। 15 – 20 सें0 ग्रे0 तापक्रम एवं 60 प्रतिशत के कम

आपेक्षित आर्द्रता रहने पर इस रोग का संक्रमण तीव्रता से होता है। यह रोग देर से बुआई की गयी फसलों पर ज्यादा दिखाई देता है। यह रोग देर से बुवाई की गयी फसलों पर ज्यादा दिखाई देता है।

काला विगलन (ब्लैक रॉट)

यह रोग *जेंथोमोनाज कैम्पेस्ट्रिस पैथोवार कैम्पेस्ट्रिस* जीवाणु से होता है। इस जीवाणु जनित रोग के लक्षण सरसों में बिजाई के दो महीने बाद दिखाई देते हैं। पौधों के रोगग्रस्त होने पर पत्तियों पर सबसे पहले बाहरी किनारों पर 'अंग्रेजी के अक्षर वी' के आकार के नमी युक्त नारंगी से पीले रंग के धब्बे बनते हैं बाद में व्याधित पत्तियों की शिराएं काली हो जाती हैं तथा रोग की उग्र अवस्था में रोग की बढ़वार अधिक हो जाने पर पूरी पत्ती पीली सी होकर मुरझा कर गिर जाती हैं। शुरू में रोग का संक्रमण होने के बाद पौधे का तना रोग्रस्त हो जाता है तथा तने की शिराएं काली हो जाती हैं। रोग से प्रभावित पौधे बौने रह जाते एवं पत्तियां समय से पहले गिर जाती हैं। जीवाणु एक फसल से दूसरी फसल तक मृदा में, बीज के साथ तथा पादप अवशेशों पर पोषण करके जीवित रहता है। यह बीज जनित रोग है। थोड़ा सा गर्म व नम मौसम इस रोग को बढ़ाता है। रोगी बीज बोने के बाद जीवाणु बढ़ने लगते हैं और पौधे को रोगग्रस्त कर देते हैं। द्वितीय निवेश द्रव्य का प्रसार वायु, पानी भौतिक व जैविक पदार्थों से होता है।

सरसों का मोजेक (मोजेक)

टरनिप वायरस–1 विषाणु जनित रोग है। सरसों में पत्ते टेढ़े–मेढ़े व रंग–विरंगे हो जाते हैं। प्रभावित पौधा बौना रह जाता है व उन पर बहुत कम या फूल नहीं लगते। प्राथमिक शाखाएं

घट जाती हैं उनमें फलियां नहीं बनती व कुछ बनती है तो दाने बहुत कम बनते हैं जिस में तेल की मात्रा घट जाती है। एफिड इस रोग के रोगवाहक हैं व इस रोग को फैलाने में सहायक है। जंगली मूली व जंगली सरसों इस रोग के परपोषी पौधें हैं।

पर्णभित्ता (फाईलोडी)

यह रोग फाइटोप्लाज्मा जीव द्वारा होता है। रोग ग्रसित फसल पर फूल आने पर इस रोग के लक्षण स्पष्ट देखे जा सकते हैं। पूर्ण पुष्पांग इस रोग से प्रभावित होते हैं। रोगग्रस्त पौधों में अनेक शाखाएं निकल आती हैं और वो झाड़ीनुमा बन जाते हैं। फलियां या तो बनती ही नहीं या छोटे आकार की अण्डाकार, नीली, हरी तथा खाली गुब्बारानुमा आकार की फलियां बनती हैं। फाइटोप्लाजमा जनित यह रोग पर्ण फुदका (लीफ हॉपर) द्वारा एक पौधे से दूसरे पौधे तक फैलता है। यह बीज जनित रोग है। अगस्त मास में अगेती बिजाई व सितम्बर मास में समय पर की गई बिजाई, इस रोग को बढ़ाती है। शुष्क व गर्म मौसम इस रोग को बढ़ाता है।

लाभप्रद जीव

काक्सीनेला मित्र कीट

इस के शिशु दुबले एवं इनके वक्षांग एवं पैर अच्छी तरह से विकसित होते हैं। इनके प्रौढ़ चमकीले, पीले, नारंगी या गहरे लाल रंग के होते हैं।

सरसों की फली पर काक्सीनेला

माहू को खाते हुए काक्सीनेला

क्रायसोपरला मित्र कीट

प्रौढ़ कीट के लेसविंग हल्के हरे रंग के 12–20 मिली मीटर लम्बे होते हैं। इनके पंख पारदर्शी एवं हरे पीले रंग के होते हैं तथा शरीर कोमल होता है।

ट्राइकोडर्मा

ट्राइकोडर्मा एक महत्वपूर्ण जैविक नियंत्रण कवक है। इन का समूह (कालोनी) सामान्यतः हरे रंग का होता है। ट्राइकोडर्मा कवक सरसों के विभिन्न रोगों जैसे सफेद रोली, मृदुरोमिल असिता, एवं स्कलेरोटिनिया गलन रोग की रोकथाम में प्रयोग किया जाता है

समेकित नाशीजीव प्रबन्धन

सरसों में नाशीजीवों के प्रकोप से बचने एवं इनसे होने वाली हानि को आर्थिक परिसीमा में नीचे रखने हेतु समेकित नाशीजीव प्रबन्धन अपनाये। इसके अन्तर्गत फसल की अवस्थानुसार निम्न उपाय करे।

बिजाई पूर्व प्रबन्धन

- **ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई:** ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करे।
- **पानी की निकासी:** बोये जाने वाले खेत को अच्छी तरह तैयार करके, पानी की निकासी का उचित प्रबन्ध करे।
- **फसल अवशेषों को नष्ट करना:** पूर्व की फसल के अवशेषों एवं रोग ग्रसित पौधों को एकत्र कर जला दे एवं खेत को साफ–सुथरा रखे।
- **समुचित फसल चक्र:** नाशीजीवों की निरन्तरता को समाप्त करने के लिए उपयुक्त फसल चक्र अपनाये।
- **सन्तुलित उर्वरक:** सरसों मे अनुमोदित किए गए सन्तुलित उर्वरको का प्रयोग करे। फसलों मे अधिक

मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग करने से चूषक कीटों (माहू इत्यादि) व बीमारियों का आक्रमण बढ जाता है। 15 कि. ग्रा./है. की दर से जिंक सल्फेट + सल्फर (स्थान विशेष) का मृदा में अनुप्रयोग करें।

बिजाई के समय प्रबंधन

- **उपयुक्त समय पर बिजाई :** सरसों की सही समय (01 अक्टूबर से 31 अक्टूबर) के दौरान बुवाई करे।
- **प्रमाणित बीज :** क्षेत्र के लिए स्वीकृत, उन्नत, स्वस्थ रोग रहित प्रमाणित बीजों का प्रयोग करे।
- **भूमि उपचार :** भूमि मे ट्राईकोडरमा कवक उत्पाद 2.5 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर को 50 कि. ग्रा. सड़ी हुई गोबर मे मिलाकर, सरसों की बुवाई से पूर्व अवश्य मिलाना चाहिए जिससे बीमारियों का प्रकोप कम होता है।
- **बीजोपचार:** ट्राईकोडरमा आधारित जैविक उत्पादक द्वारा 10 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से या ताजा बनाये हुये लहसुन सत से 2 प्रतिशत की दर से बीजोपचार करे।
- **उचित दूरी:** बीज की सिफारिश से ज्यादा मात्रा का प्रयोग न करे व कतार से कतार की व पौधे से पौधे की उचित दूरी बनाये रखे।

वानस्पतिक अवस्था पर प्रबन्धन

- छोटे पौधों में सिंचाई करने से पौधे चितकबरा कीट के आक्रमण को सहन कर पाने में काफी सक्षम हो जाते है।
- माहू के प्रकोप से प्रभावित टहनियों को प्रारम्भिक अवस्था में ही तोड़कर नष्ट कर दे।
- माहू के प्राकृतिक शत्रु (परभक्षी दुश्मन) कीट जैसे क्राइसोपा, सिरफिड, काक्सीनेला आदि की कीटनाशकों से रक्षा करे।
- सरसों के माहू के पर्यावरण संतुलित प्रबंधन के लिए 1 मि. ली. प्रति ली. पानी की दर से डाइमिथोएट का छिडकाव करे।
- आवश्यकता से अधिक पौधों का विरलीकरण अवश्य करे। कीटों व रोगों से ग्रसित पौधों को रवेत से निकालकर नष्ट करें।
- फसल की आवश्यकता अनुसार 2–3 सिंचाई जैसे पहली सिंचाई फूल आते समय, दूसरी सिंचाई फली बनते समय तथा तीसरी सिंचाई दाना भरते समय करें।

फूल एवं फली बनने की अवस्था पर प्रबन्धन

- खेत का रोजाना भ्रमण करें व नाशीजीव दिखने पर नियंत्रण के उपाय तुरंत अपनाए।
- ताजा बनाये हुये लहसुन सत से 2 प्रतिशत या ट्राईकोडरमा कवक उत्पाद 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से दर से छिडकाव करें।
- सफेद रतुआ के ज्यादा प्रकोप पर मैटालैक्सिल 4 प्रतिशत + मैन्कोजेब 68 प्रतिशत कवकनाशी का 2.5 ग्राम प्रति लीटर की दर से पानी मे घोल बनाकर छिड़काव करे।
- काले धब्बों का रोग के लक्षण दिरवाई देते ही आईप्रोडियोन 50 प्रतिशत घुलनशील कवकनाशी 3 ग्राम प्रतिलिटर या ट्राईकोडरमा कवक उत्पाद 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से या ताजा बनाये हुये लहसुन सत से 2 प्रतिशत की दर से छिडकाव करें।
- सरसों में माहू के प्रबन्धन के लिए थायामिथोक्साम 25 डब्ल्यूजी का एक ग्राम प्रति 10 लिटर पानी की दर से आवश्यकता आधारित छिड़काव करें।
- स्कलरोटिनिया तना गलन रोग ग्रसित पौधे जो कि सामान्य पौधो से पहले पक जाते है को पिंड (स्क्लरोशिया) बनने से पूर्व ही जड़ से उरवाड़ कर बाहर निकाल दें एवं बाद में रोग ग्रसित अवशेषों को जला दे।
- समय–समय पर खेत से खरपतवार निकालते रहे व मधुमक्खियों को कीटनाशकों के नुकसान से बचाने के लिए कीटनाशकों का छिड़काव शाम के समय ही करे।

आर्थिक समीक्षा

रा.स.ना.प्र.अनु.के. द्वारा विकसित सरसों में आई.पी. एम. प्रणाली को फसल वर्ष 2014 से 2017 तक जिला अलवर, राजस्थान व महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) के सिंचित क्षेत्र के किसानों द्वारा सरसों की फसल में 60 हेक्टेयर में अपनाने से उनकी उपज में गैर–आई. पी. एम. किसानों की तुलना में 10 प्रतिशत बृद्धि हुई। आईपीएम तकनीक में प्रत्येक अतिरिक्त रूपये के निवेश पर 5.1 रुपये का लाभ प्राप्त हुआ जो कि उस तकनकी को अपनाने की लिए अच्छा आर्थिक तर्क प्रदान करता है।

नाशीजीव	सहनशील किस्में
नाशीजीव	सहनशील किस्में
सफेद रतुआ	बायो वाई एस आर, जी एम 1, पूसा डब्बल जीरो सरसों 31
स्कलेरोटिनिया गलन	पूसा आदित्य, किरण, पूसा करिश्मा, आर एल एम 619
चुर्णिल आसिता	पूसा सरसों 26

साराँश

सरसों वर्गीय फसलें हमारे देश की तिलहन अर्थव्यवस्था में मुख्य भूमिका निभाती है। इन फसलों की खेती मुख्यतः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, मध्य प्रदेश व गुजरात में होती है। इन फसलों के अस्थिर उत्पादन के लिए नाशीजीवों का प्रकोप बहुत उत्तरदायी है। सरसों वर्गीय फसलों में प्रमुख नाशीजीव रोग आल्टरनेरिया ब्लाईट, सफेद रतुआ व तना गलन व कीट चेपा व दगाली बग हैं। इसलिए खेती की उन्नत तकनीक अपनाने के बावजूद भी यदि नाशीजीवों का समेकित प्रबन्धन नहीं किया गया तो अधिक उपज प्राप्त करना संभव नहीं। इस लेख के माध्यम से सरसों वर्गीय फसलों के प्रमुख नाशीजीवों की पहचान एवं समेकित नाशीजीव प्रबन्धन के उपाय प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

"देश की प्रगति है तब तक अधूरी
किसान के विकास के बिना होगी न पूरी"